भारतीय परिप्रेक्ष्य में वैश्वीकरण का सामाजिक प्रभाव

नरेश कुमार
प्रवक्ता– इतिहास
शिक्षा विभाग, हरियाणा
Adhar No. 98116009526
Email id: yadavnaresh728@gmail.com

प्रस्तावना

भारतीय इतिहास में 20वीं सदी के अन्तिम दशक की सभी प्रमुख घटनाओं में सर्वोपरी है–भूमण्डलीकरण या वैश्वीकरण की घटना। भले ही आने वाली पीढ़ी इतिहास कि किसी घटना को याद रखें या न रखें मगर यह जरूर याद रखेगी की कैसे समाज को परिवर्तित करने वाली एक वैश्वीकरण की व्यवस्था प्रकट हुई और कैसे इसकी ओर समस्त भारतीय समुदाय खिंचता ही चला गया। भारतीय समाज जो सदियों से चाहे कितनी भी क्रांतियाँ, युद्ध, विश्व युद्ध या विदेशी आक्रमण हुए हो अपनी संस्कृति, रीति–रिवाज, कला साहित्य व जीवन शैली के प्रति जड़ हो चुका था इस जड़ हो चुकी सामाजिक व्यवस्था को भूमंडलीकरण ने अवांछनीय रूप से रातों–रात बदल कर रख दिया। बीसवीं सदी का अन्तिम दशक एक परिवर्तनशील दशक रहा जिसमें आर्थिक बदलावों के साथ–साथ सामाजिक व राजनीतिक परिवर्तन भी परिलक्षित हुए हैं।

गिडेंस के अनुसार, *''भूमंडलीकरण का अर्थ विश्वभर के सामाजिक सम्बंधों को इतना प्रचंड बना देना है कि दूर–दराज के क्षेत्रों में जो भी स्थानीय स्तर पर घटे उसे हजारों मील दूर घटने वाली घटनाएँ तय करें।''*[1]

इस तरह से हम कह सकते हैं कि भूमंडलीकरण का अर्थ है– पूरे विश्व का एक होना क्योंकि इस प्रक्रिया के कारण सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं व मुद्दों ने विश्वव्यापी रूप ले लिया है। अब किसी क्षेत्र की समस्याओं पर सारा विश्व विचार विमर्श करता है क्योंकि सभी के हित आपस में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए हैं। भूमण्डलीकरण ने सूचना तकनीकी तथा सूचना के क्षेत्र में अभूतपूर्व क्रांति ला दी है, कोई भी घटना अब कुछ ही क्षणों में पूरे संसार तक पहुँचाई जा सकती है। आज संसार के सभी देशों का एक–दूसरे के

साथ वस्तु, सेवा, पूँजी व बौद्धिक सम्पदा का अप्रतिबन्धित आदान–प्रदान ही भूमण्डलीकरण कहलाता है। यह तभी संभव है जब इसे अन्तर्राष्ट्रीय संस्था संचालित करें जिसमें सभी देशों को विश्वास हो और जो सर्वसम्मति से नीति निर्धारक सिद्धांतो का निरूपण करें। समान नियम के अनुशासन में रहकर जब सभी देश अपने व्यापार और निवेश का संचालन करते हैं तो निश्चित रूप से वह एक ही धारा में प्रवाहित होते हैं और यही भूमण्डलीकरण या वैश्वीकरण है। संक्षेप में भूमण्डलीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो क्रमशः एवं चरणबद्ध तरीके से वैश्विक समुदाय को एकीकृत करने का प्रयास कर रही है। यह प्रक्रिया उतनी ही पुरानी है, जितनी मानव सभ्यता। हालांकि संकल्पना के रूप में शब्द की चर्चा विश्व युद्ध के बाद के काल में हुई लेकिन सिंधु धाटी सभ्यता एवं सुमेरियाई सभ्यता के बीच व्यापारिक संबंध इसकी प्राचीनता की ओर इशारा करते हैं। आधुनिक समय में यह संकल्पना 1960 के दशक से चर्चा में आई जब कैनेडियाई साहित्य के आलोचक मार्शल लोहान ने वैश्विक ग्राम शब्द को लोकप्रिय बनाया। तकनीक के बढ़ने के साथ ही यह प्रक्रिया और तीव्र रूप से फैलती गई लेकिन शीत युद्ध के माहौल ने इसकी रफ्तार को मंद रखा। 1991 में सोवियत संघ के विघटन तथा भारतीय अर्थव्यवस्था के खुलने से प्रक्रिया तो तीव्र हुई ही, भारत भी इस वैश्विक ग्राम का एक महत्वपूर्ण सदस्य बन गया। ''वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए भी प्रयुक्त किया जा सकता है जिसके द्वारा पूरे विश्व के लोग मिलकर एक समाज को बनाते हैं तथा एक साथ कार्य करते हैं। यह प्रक्रिया आर्थिक, तकनीकी सामाजिक और राजनीतिक ताकतों का एक संयोजन है।''[2]

आजादी के बाद सरकार की समाजवादी नीतियों के कारण आर्थिक वृद्धि कम रही इससे देश में परिवर्तन धीमे और सीमित रूप में हुए। समाजवादी नीतियों ने भारतीय समाज तथा उनकी संस्थाओं में क्रांतिकारी परिवर्तनों को रोके रखा। 1991 की नई आर्थिक नीति उदारीकरण, निजीकरण तथा वैश्वीकरण ने उन प्राचीन भारतीय परम्पराओं और आत्मनिर्भर ग्रामीण ढांचे पर प्रहार किया जिसमें भारतीय समाज शताब्दियों से रहता आया था। देश की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को समस्त बाहरी प्रभावों से बचाए रखने वाला रक्षा कवच टूटने लगा और निजी सम्पति, व्यक्तिगत उद्यम, पूँजी के संग्रह और प्रौद्योगिकी प्रगति के आधार पर नए आधुनिक समाज की स्थापना का मार्ग वैश्वीकरण के कारण ही प्रशस्त हुआ।

20वीं सदी को भारतीय इतिहास में परिवर्तन एवं निरंतरता के काल के रूप में रेखाकिंत किया जाता है। इसके अन्तिम दशक 1991 में देश की अर्थव्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन कर उदारीकरण निजीकरण तथा वैश्वीकरण की नई आर्थिक नीतियों को अपनाया गया। देश की अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ दिया गया। भारतीय बाजार बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए खोल दिया इससे विदेशी माल तथा निवेश बड़े स्तर पर देश में आना प्रारम्भ हुआ। विदेशी कम्पनियों द्वारा अनेक नए–नए उद्योगों की स्थापना की गई जिससे रोजगार के लाखों अवसर पैदा हुए और युवाओं को इन नए क्षेत्रों में रोजगार प्राप्त हुआ इससे कृषि क्षेत्र पर दबाव कम हुआ।

चूंकि प्रभावित करना व होना वैश्वीकरण की अनिवार्य प्रवृति हैअतः भारत में समाज, अर्थव्यवस्था व राजनीति इत्यादि के सभी हिस्सों को इसने गंभीरता से प्रभावित किया। इसके कुछ प्रभाव सकारात्मक रहे तो कुछ नकारात्मक भी रहे। वैश्वीकरण के सामाजिक प्रभाव सबसे अधिक प्रभावी एवं स्थाई हैं। समसामयिक समाज में वैश्वीकरण का विचार विसंगतियों के बावजूद आधुनिक राष्ट्र राज्यों के विकास की अनिवार्य शर्त बनता जा रहा है। इसने मानवीय जीवन के प्राय हर पहलू को प्रभावित करने की कोशिश की है। समाज के सभी वर्गों एवं समूहों के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन को भी इसने गंभीर रूप से प्रभावित किया है। यह हमारे द्रुत विकास एवं परिवर्तन के लिए आवश्यक है।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से विश्व के देशो को एकजुट किया जा सकता है। आज भारत विश्व के साथ बढ़ती आर्थिक गतिविधियों, पारस्परिक विनिमय, कम्प्यूटर सूचना क्रांति, वैश्विक सम्बंधो इत्यादि के कारण विश्व पटल पर एक नई शक्ति के रूप में वैश्वीकरण के कारण ही उभर रहा है। आज विश्व के तमाम देश वैश्वीकरण की प्रक्रिया में संलग्न है और इसका लाभ भी उठा रहे हैं। किंतु इसके प्रति आम लोगों में आशकाएँ भी हैं और अपेक्षाएँ भी विशेषकर शोषित दलित व वंचित लोगों में।

वैश्वीकरण और दलित– दलित अपने अस्तित्व व अस्मिता के लिए शताब्दियों से समाज के समक्ष प्रयासरत रहा है। दलित शब्द का अर्थ रहा है– टूटा हुआ, दबा हुआ, कुचला हुआ आदि। अंग्रेजी में दलित के लिए डिप्रेस्ड् शब्द है जिसका अर्थ है–''दबाना, नीचा करना।

1. जिसका दलन हुआ हो।
2. जो कुचला, मसला या रोंदा गया हो।
3. टुकड़े–टुकड़े किया हुआ चुर्णित।
4. जो दबाया गया हो अथवा जिसे पनपने या बढने न दिया गया हो।''[3]

भारतीय समाज में दलित सदियों से शोषित, पीड़ित तथा उपेक्षित रहा है। इसके हिस्से केवल कर्तव्य आए हैं, अधिकार नहीं। 20वीं सदी के अन्तिम दशक में वैश्वीकरण की वजह से दलितों की अस्मिता को स्वीकार कर उन्हें समाज में हाशिए से केन्द्र में आने के अवसर उपलब्ध होने लगे हैं। समाज, संस्कृति इतिहास और परम्परा में अपनी खोई हुई अस्मिता को पहचानने की कोशिश में 21वीं सदी का यह दलित समुदाय वैश्वीकरण के दौर में बदलते समय व समाज में अपने प्रति कुछ सकारात्मक पाते हुए अपनी पीड़ा और आक्रोश के साथ समाज और संस्कृति से समता, न्याय, बंधुत्व, सम्मान तथा स्वावलम्बन की मांग पर आगे बढ़ रहा है। ''वह (दलित) एक गुलाम की तरह नहीं स्वतंत्र नागरिक की तरह जीना चाहता है।''[4]

वैश्वीकरण के युग में शिक्षा और रोजगार के अवसर गाँव और छोटे कस्बों तक भी पहुंच गए हैं। इससे दलितों को भी फायदे हो रहे हैं क्योंकि सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक प्रणाली पर ऊँची जातियों के वर्चस्व के दिन अब पुरानी बातें होने लगी हैं। वहीं दलितों की भलाई की बातें अब दिखाई देने लगी हैं। वैश्वीकरण के दौर में धर्म, जाति, वर्ग व लिंग संम्बंधी भेदभाव के बगैर परस्पर आर्थिक गतिविधियों एवं अन्तः क्रियाओं से ना सिर्फ दलित एवं वंचित वर्ग मुख्य धारा से जुड़ पायेगें बल्कि उनके बीच एक प्रकार की सामाजिक एकजुटता की भावना भी पनपेगी। उल्लेखनीय है कि बिजनेस प्रोसेस आउटसोर्सिंग कम्पनियों के आगमन से लोगों के रोजगार के अवसर काफी बढ़े हैं।इनमें एक बार नियुक्त हो जाने के बाद उन्हें भोजन, शरण और परिवहन जैसी सुविधाएँ भी उपलब्ध करायी जाती हैं। इस तरह के कार्य में लगे लोग जाति,

धर्म, लिंग से ऊपर उठकर कार्य करते हैं अतः इससे सामाजिक समरसता का वातावरण भी बनता है। ''हम पढ़े–लिखेहैं। हमारी जिम्मेदारी बन जाती है कि हम अपने समाज की बदहाली को गुने और उसे दूर करने के सम्भावित उपाय खोजे।''[5]

भारत में राज्य लोक कल्याणकारी नीतियों एवं कार्यक्रमों जिसमें आरक्षण की नीति भी शामिल है, के माध्यम से दलितों की दीन–हीन दशा को सुधारने की प्रक्रिया प्रयत्नशील है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया की प्रकृति ऐसी है जिसमें योग्य, सक्षम और समर्थ लोग लाभान्वित हुए हैं। आरक्षण की प्रक्रिया के तहत दलितों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के अवसर भी उपलब्ध हो रहे हैं जिससे उन्हें रोजगार के अधिकाधिक अवसर मिल रहे हैं क्योंकि यह योग्यतम की उत्तरजीविता का युग है जिसमें जातिगत और लिंगगत भेदभाव को समाप्त करने की कोशिश की जा रही है। अतः दलितों की शैक्षिक योग्यता को देखते हुए उच्च प्रौद्योगिकी उद्योगों में नौकरी हासिल करने की उनकी संभावना बहुत प्रबल हुई है। वैश्वीकरण ने पारंपरिक व्यवसायिक अवसरों को आकर्षक लाभकारी अवसरों में बदल दिया है जहां दलितों को अब प्रतिस्पर्धा करना आसान लगता है।

विशेष आर्थिक क्षेत्र की अवधारण और व्यापार तथा उदारीकरण के बाद के प्रसार की प्रतिबद्धता ने न केवल उनकी दुर्दशा को बल्कि सामाजिक न्याय के सिद्धांतो को गंभीरता से कम करने का प्रयास किया है। स्वतंत्र बाजार अर्थव्यवस्था ने दलितों को तनाव मुक्त किया है। बाजार बिना सामाजिक निषेध के अपने ब्रांड का अभ्यास करता है और दलितों को उनके मुनाफे के हिस्से के रूप में स्वीकृत करता है उन्हें सब्सिडी वाले चावल, गेहूं और दालों के साथ मुख्यधारा में जोड़े जाने की कोशिश की जा रही है।

दूसरी ओर उदार विचारों के साथ दलितों ने संरक्षक व्यवसाय संबंधों की बेड़ियों को तोड़ दिया है और उनमें से कुछ शिक्षाविदों एवं अन्य व्यवसायों में भाग ले रहे है और अपनी रूचि को व्यक्त कर रहे हैं। राजनीतिक अवसर और समानता ने उन्हें अपने सामाजिक और आर्थिक अधिकारों के लिए प्रेरित किया है। अतः सामाजिक परिप्रेक्ष्य में गरीबों एवं दलितों को ध्यान में रखते हुए वैश्वीकरण की प्रक्रिया के परिणाम हाशिए के लोगों के लिए परिवर्तनकारी हैं।

वैश्वीकरण और महिलाएँ– इसमें संदेह नहीं कि वैश्वीकरण के युग में महिलाओं को उन्नति एवं विकास के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध करवाएँ हैं। बड़े पैमाने पर रोजगार सृजन कर के महिलाओं को समाज, राष्ट्र व विश्व आर्थिक प्रगति में भागीदार बनाया जा रहा है। इस प्रक्रिया के तहत महिलाओं के अनुकूल रोजगार का निर्माण भी किया गया ताकि योग्य एवं सक्षम महिलाएँ समाज के आर्थिक विकास में अपना योगदान दे सके। आर्थिक प्रणाली में पाश्चात्य मूल्यों की स्वीकृति के कारण कार्य के क्षेत्र में पुरुष व महिलाओं में कोई अन्तर अब नहीं किया जाता। उनकी सुरक्षा की समुचित गारंटी भी दी जाती है। आज की महिलाएं स्वयं को ज्यादा स्वतंत्र एवं ज्यादा आत्मनिर्भर महसूस कर रही हैं और विकास की प्रक्रिया में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रही हैं। इससे उनकी सामजिक स्थिति भी सुदृढ़ हुई है और उन्हें सम्मान एवं प्रतिष्ठा की दृष्टि से भी देखा जा रहा है। इसमें कोई संदेह नहीं की वैश्वीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप भारतीय महिलाओं की सामाजिक आर्थिक स्थिति में व्यापक सुधार हुआ है। अब वह पहले की अबला नारी न रहकर सम्पूर्ण व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुकी है। एक ऐसा हिस्सा जिसके बिना समाज का आर्थिक विकास सम्भव ही नहीं है। इस संदर्भ में प्रभा खेतान लिखती है–– '' स्त्री मनुष्य है और एक जीवित मनुष्य है। व्यवस्था को उसे सम्पूर्णता में ही देखना होगा।''[6]स्त्री की अस्मिता की पहचान वैश्वीकरण के प्रभावस्वरूप ही उभर कर आई है। महिला विकास एंव महिला सशक्तीकरण के वैश्वीकरण के प्रयत्नों के बावजूद भारत में इसका प्रभाव कई क्षेत्रों में नकारात्मक भी रहा है। सर्वप्रथम तो बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के अंतर्गत महिलाओं का वस्तुकरण हो गया है वे प्रदर्शनी की चीज बनती जा रही हैं। बड़ी–बड़ी कम्पनियाँ अपने व्यापारिक हितों की पूर्ति तथा अपनी सेवाओं और वस्तुओं को बेचने के लिए महिलाओं की योग्यता, समता एवं व्यक्तित्व का भरपूर प्रयोग करती है। भारत में लगभग कुल श्रमिकों का 31 प्रतिशत महिलाएँ हैं। जिसमें से 95–96 प्रतिशत असंगठित क्षेत्रों में काम करती है। इन क्षेत्रों में न तो अच्छा वेतन है, न काम के निश्चित घंटे, न कोई जॉब सिक्योरिटी और न ही सामाजिक सुरक्षा। इन क्षेत्रों में काम करने वाली महिलाओं के शोषण की संभावनाएँ बहुत अधिक होती हैं। इस संदर्भ में चित्रा मुद्गल लिखती है कि–''स्त्री देह केस्तर पर निश्चित रूप से शोषित हुई है मगर केवल देह के स्तर पर नहीं हुई है, स्त्री की सम्पूर्ण मानसिकता का शोषण हुआ है।''[7]

कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न हर क्षेत्र की महिलाओं के साथ होता है चाहे वह संगठित हो या असंगठित, विशेषतौर पर रात की शिफ्ट में काम कर रही महिलाओं के साथ। वैश्वीकरण के चलते बीपीओ कॉल–सेंटर नए रोजगार बनकर उभरे हैं पर इनमें काम करने वाली महिलाओं की सुरक्षा पर अक्सर सवाल खड़े होते हैं। असंगठित क्षेत्रों में काम की अनिश्चितता होती है। प्रतिस्पर्धा के इस युग में नौकरी को बचाए रखने के लिए महिलाएँ अक्सर देर तक अपनी क्षमता से ज्यादा काम करती हैं। श्रमिक कानूनों को धता बताकर न सिर्फ असंगठित बल्कि आईटी आदि अच्छे क्षेत्रों में भी बारह–बारह घंटे काम लेना सामान्य माना जाने लगा है। प्रतिस्पर्धा से उत्पन्न तनाव, मानसिक व शारीरिक थकान, काम के लंबे घंटे स्वास्थ्य के लिए भी घातक है और कई मनोविकारों को भी जन्म देते हैं।

भूमण्डलीकरण ने स्त्रियों की स्थिति में बहुत से बदलाव ला दिये है। वह फिल्म, मॉडलिंग, सीरियल, पॉप संगीत, विज्ञापनों एवं सौन्दर्य प्रतियोगिताओं से लेकर गाँव की सरपंच तक के हर पद पर विराजित होती जा रही है। वर्तमान में उदारीकरण ने उन्हें पावर वूमन बना दिया है। बाजार, नौकरी, पूँजी एवं संचार क्रांति की ताकत ने औरत को निजी आमदनी के स्त्रोत दिये हैं तो दूसरी और उन्होनें इसकी सुन्दरता एवं मौलिकता को खूब भुनाया भी है। इसका एक परिणाम यह भी हुआ है कि स्त्री मनोरंजन उद्योग के केन्द्र में आ गई है।

वैश्वीकरण के दौर में महिलाओं की स्थिति बेहतर बनाने के लिए कई सुधार वांछनीय है जैसे– स्त्री और पुरुष के लिए समान कार्य समान वेतन जैसे कानून का प्रावधान किया जाए। महिलाओं को संसाधनों, रोजगार, बाजार एवं व्यापार, सूचना व टैक्नोलॉजी में बराबर का हिस्सा मिले। कार्यस्थलों पर यौन उत्पीड़न एवं अन्य तरह के भेदभावों को दूर किया जाए। गरीब महिलाओं को आर्थिक सहायता प्रदान की जाए। पर्यावरण संबंधी नीतियों के मामले में औरतों को शामिल किया जाए। औरतों के विकास की जिम्मेदारी सरकार में ऊँचे स्तर पर सौंपी जाए। अतः इसमें संदेह नहीं है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया से महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है किन्तु कई अपेक्षित सुधार अभी भी बाकी हैं।

वैश्वीकरण और आदिवासी– आदिवासी अर्थात् आदिम जाति या जनजाति से तात्पर्य है–मूलवासी, वनवासी, आदिजन, जंगल–पहाड़ में रहने वाला, आधुनिक सभ्यता से अलग–थलग रहने वाला एक मानव समुदाय। ऐसे अनेक समुदाय है जिन्हें सम्मिलित रूप से आदिवासी समाज से अभिहित किया गया है। भारतीय संविधान में जिन जनजातियों को मान्यता प्राप्त है उनकी संख्या 2129 है। इन जनजातियों के समुदायों को सम्मिलित रूप से आदिवासी कहकर पुकारा जाता है।

वैश्वीकरण के इस दौर में भी आदिवासियों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया। आज भी उनकी स्थिति वर्तमान व्यवस्था के प्रति एक आक्रोश उत्पन्न करती है । वर्तमान समय में आदिवासी शब्द के उच्चारण से ही हमारे सम्मुख खड़ा हो जाता है प्रत्येक सदी में छला गया, सताया गया और एक सोची समझी साजिश के तहत वन जंगलों में जबरन भगाया एक असंगठित मनुष्य जो जंगलों में निवास करता है। यथा– ''वर्तमान समय में 'आदिवासी' शब्द का प्रयोग विशिष्ट पर्यावरण में रहने वाले, विशिष्ट जीवन पद्धति और परम्पराओं से सजे और सदियों से पहाड़ो का जीवन यापन करते हुए अपने धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को संभालकर रखने वाले मानव–समूह का परिचय करा देने के लिए किया जाता है।''[8] आदिवासी लोग अपनी जिजीविषा और जीवन के बल पर सदैव आत्मनिर्भर और स्वावलम्बी रहे हैं। वह प्रकृति के सानिध्य में रहता है, प्रकृति का प्रकोप भी सहता है किन्तु उसे नष्ट नहीं करता केवल जीने भर, जरूरत भर उससे लेता है पर बदले में देता भी है अपना प्यार अपनी देख–रेख और संवेदना। प्रख्यात पर्यावरणविद् आशीष कोठारी कहते है कि–''हम आदिवासी अधिकारों के दिये जाने की वजह से भारतीय वनों के सम्भावित नुकसान पर शोक मनाते हैं लेकिन हम अपनी जीवन शैली को लेकर खुश है जो उससे कही अधिक विनाश करती है।''[9]

वैश्वीकरण के बाद से ही आदिवासियों को राजनीतिक, आर्थिक व प्रशासनिक दृष्टि से शेष भारतीय समाज के साथ जोड़ने की कोशिश की गई है। इस प्रक्रिया में न केवल उनका स्वतंत्र व शांतिपूर्ण जीवन भंग हुआ वरन् वे भी कर्ज, बेरोजगारी, गरीबी–शोषण जैसी आधुनिकतावादी प्रवृतियों से ग्रस्त हुए। यही से उनके मानवाधिकारों के हनन की प्रक्रिया भी शुरू हुई। रेलवे औद्योगिकरण, बांध निर्माण, कम्पनियों की स्थापना के लिए जंगल की भूमि ली गई और आदिवासियों को बिना मुआवजे के बेदखल कर दिया गया क्योंकि उनके पास अभिलेख

के रूप में कोई मालिकाना हक नहीं था। विकास के नाम पर निर्वाह के लिए आवश्यक अधिकतम प्राकृतिक स्त्रोतों से वंचित वनवासी का जीवन और अधिक जटिल हो गया। निरंतर खराब होती आर्थिक स्थिति के कारण आदिवासियों का जीवन स्तर और अधिक नीचे गिर गया है।

आदिवासियों का जीवन आम लोगों से इस अर्थ में भिन्न है कि वे आधुनिकतावादी प्रवृतियों से पार्थक्य की नीति अपनाते हैं अर्थात अपनी संस्कृति, परम्पराओं को आदिवासी समाज किसी प्रकार से छोड़ना नहीं चाहता है। आधुनिक समाज के लोगों से मिलने भर से ही भयभीत होने वाला यह वर्ग समूल नष्ट होने की आशंका से डर जाता है। ऐतिहासिक रूप से अगर किसी समाज विशेष ने उसको अपने समाज से सम्बंधित होने का अवसर भी दिया तो उसे अंततः घोर शोषण ही प्राप्त हुआ। अतः यह समाज अपनी पहचान को कायम रखना चाहता है। इसके लिए वह किसी भी ऐसे संभावित खतरे से बचाव का एकमात्र उपाय आधुनिक विश्व के विकास से स्वंय को दूर रखने में ही मानता है। ये लोग अपनी नृजातीय सांस्कृतिक विशेषताओं को अक्षुण्ण बनाए रखना चाहते हैं। बरियर ऐल्विन का कहना है कि ''आदिवासियों को बचाना है तो इसके रहनवास और पारिस्थितिकी को उन्हीं के अनुसार छोड़ दिया जाए, उन पर बाहरी हस्तक्षेप खत्म कर दिया जाए।''[10]

आज हम स्वयं को ग्लोबल गाँव के नागरिक होने का गर्व अनुभव करते हैं। वैश्वीकरण और विकास के नाम पर प्रकृति का लगातार दोहन करते आ रहे हैं। परिणाम हमारे सामने है– विकास की इस अन्ध अवधारणा ने मनुष्य को मानव से दानव बना दिया है। विकास का यही परिणाम पर्यावरण असंतुलन के रूप में हमारे सामने है। वैश्वीकरण के कारण आई टैक्नोलॉजी के विस्तार ने आदिवासियों के घर अर्थात् जंगल के जंगल उजाड़ दिये तो आदिवासियों में चेतना जागृत हुई जिस कारण वह अब सम्पूर्ण समाज से अपना हक मांगने लगे हैं।

आदिवासी अचंलो से प्राकृतिक संसाधनों को लूटने की जो लालसा वैश्वीकरण के इस दौर में चल रही है, उससे आदिवासी समाज के जीवन को नरकीय बना दिया है। आधारभूत सुविधाओं, मानवाधिकारों, लोकतंत्र में भागीदारी आदि विकास की बातें तो दिखावटीपन लिऐ हुए

हैं ही तो दूसरी और इस समुदाय का अस्तित्व ही गहरे संकट से जूझ रहा है। वैश्वीकरण के इस युग में आदिवासियों का वनों से प्रतिकात्मक संबंधो पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है।

पांरपरिक दृष्टि से वनों पर इनका एक प्रकार से नियंत्रण रहता था सरकार द्वारा इन वनों व प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन अपने हाथो में लेने से तथा प्रशासनिक ज्यादती के कारण इस वर्ग में तनाव बढ़ा है। आज आदिवासियों की मूलभूत समस्याएँ रोटी, कपड़ा, मकान, बेरोजगारी एवं शिक्षा की है तथा संविधान में इन्हें जो अधिकार दिये गए हैं वो भी मूल रूप से लागू नहीं हुए हैं। अतः आदिवासियों के संवैधानिक अधिकार धरातल पर लागू किये जाने चाहिए ताकि संस्कृति, सभ्यता, परंपरा, जल–जंगल–जमीन का सरंक्षण किया जा सके।

निष्कर्ष

अन्ततः कहा जा सकता है कि वैश्वीकरण के सकारात्मक तथा नकरात्मक दोनों ही पक्ष हैं। वैश्वीकरण की इस प्रक्रिया में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विकासशील देशों में प्रत्यक्ष निवेश, वृद्धि, गुणवत्ता आधारित उपभोक्ता साम्रगी का प्रसार, घरेलू व कुटीर उद्योगों को अंतर्राष्ट्रीय पहचान आदि को बढ़ावा दिया है। गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या में तेजी से कमी हुई है। नकरात्मक प्रभावों पर विचार करने पर पूँजीवाद का विकृत चेहरा ही दिखाई देता है। भारत में स्थानीय लघु व कुटीर उद्योगों का ध्वस्त होना, कृषकों को भूमिहीन करके उनको श्रमिक बनाना, पाश्चात्य संस्कृति की घटिया परंपराओं का समाज में प्रवेश करना, भूमिह्यस व सामाजिक अपराधों में वृद्धि आदि का तीव्र प्रसार हुआ है।दूसरी ओर सकारात्मक प्रभावों में भारत को वैश्वीकरण के माध्यम से विश्व पटल पर एक नई पहचान मिली जिससे पूरी दुनिया के देश भारत के साथ सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं व्यापारिक विनिमय और सम्बंध जोड़ने लगे हैं। वैश्वीकरण की ग्राह्यता के कारण भारत की ना केवल सामाजिक स्थिति सुदृढ़ हुई अपितु सदियों से हाशिए पर पड़ी जातियाँ भी अपने अधिकारों के प्रति जागृत होकर केन्द्र में आने की कोशिश करते हुए देश के विकास से जुड़ कर भारत को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति दिलाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. एंथोनी गिडेंस, दी कान्सीक्वेन्सज ऑफ मॉडर्निटी
2. शैला एल. क्रोचर, वैश्वीकरण और संबंध; एक बदलती हुई दुनिया की पहचान की राजनीति, रोमैन और लिटिलफील्ड (2008) पृ0सं. 10
3. रामचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश, तीसरा खंड, पृ. 25
4. सं. दिलीप मेहरा, हिन्दी कथा–साहित्य में दलित विमर्श, पृ. 183
5. सं. रत्न कुमार सांभरिया, हमारी जमीं हम बोएगें, पृ. सं. 93
6. राजेन्द्र यादव, औरत उत्तर कथा, बाहर और भीतर की दुनिया शीर्षक लेख, पृ. 150
7. चित्रा मुदगल से सुशील सिद्धार्थ का एक साक्षात्कार, हिन्दुस्तान, सितम्बर 1999, सम्पादकीय पृष्ठ
8. रमणिका गुप्ता, आदिवासी स्वर और नई शताब्दी, खण्ड–2, पृ. सं 215
9. प्रकाश चन्द्र मेहता, भारत के आदिवासी, शिवा पब्लिर्शस, उदयपुर
10. कुमुद शर्मा, भूमण्डलीकरण और मीडिया, ग्रन्थ अकादमी, नई दिल्ली।